Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

[श्री टोडरमल ग्रन्थमाला का दसवाँ पुष्प]

वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-१

(श्री वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड द्वारा निर्धारित)

लेखक व सम्पादक :

डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम॰ ए॰, पीएच॰ डी॰

संयुक्त मंत्री, पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

प्रकाशक :

मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५ (राज॰).

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated to mark the 15th svargvaas anniversary (28 September 2004) of, Laxmiben Premchand Shah, by her daughter, Jyoti Ramnik Gudka, Leicester, UK who has paid for it to be "electronised" and made available on the Internet.

Our request to you:

1) We have taken great care to ensure this electronic version of Vitraag-Vigyaan Pathmala, Part 1 is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

<table>
<tr><th>Version Number</th><th>Date</th><th>Changes</th></tr>
<tr><td>001</td><td>23 Sept 2004</td><td>First electronic version. Error corrections made:
<table>
<tr><th>Errors in Original Physical Version</th><th>Electronic Version Corrections</th></tr>
<tr><td>Page 28, Line 5: वराग्यमय</td><td>वैराग्यमय</td></tr>
</table>
</td></tr>
</table>

हिन्दी :

प्रथम आठ संस्करण (३१ मार्च १९६९ से १९९०)	:	६१,८००
नवम् संस्करण (५ अप्रेल, १९९३) (महावीर जयन्ती)	:	५,०००

गुजराती :

प्रथम दो संस्करण	:	८,२००

कन्नड़ :

प्रथम दो संस्करण	:	४,०००

मराठी :

प्रथम दो संस्करण	:	१०,०००

अंग्रेजी :

प्रथम संस्करण	:	५,०००
सभी भाषाओं में कुल	**:**	**९४,०००**

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि.,
एम. आई. रोड, जयपुर

विषय-सूची

क्रम	नाम पाठ	पृष्ठ
१.	देव स्तुति	०३
२.	आत्मा और परमात्मा	०९
३.	सात तत्त्व	१२
४.	षट् आवश्यक	१६
५.	कर्म	१८
६.	रक्षाबन्धन	२२
७.	जम्बूस्वामी	२५
८.	बारह भावना	२९

पाठ १

देव-स्तुति

पं॰ दौलतरामजी

दर्शन स्तुति

दोहा

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि,
निजानंद रसलीन ।
सो जिनेंद्र जयवंत नित,
अरिरजरहस विहीन ।। १ ।।

पद्धरि छंद

जय वीतराग विज्ञानपूर।
जय मोहतिमिर को हरन सूर।।
जय ज्ञान अनंतानंत धार।
दृगसुख वीरजमंडित अपार।। २ ।।

जिनेन्द्र देव की स्तुति करते हुए पं॰ दौलतरामजी कहते हैं कि – हे जिनेन्द्र देव! आप समस्त ज्ञेयों (लोकालोक) के ज्ञाता होने पर भी अपनी आत्मा के आनन्द में लीन रहते हो। चार घातिया कर्म हैं निमित्त जिनके, ऐसे मोह–राग–द्वेष, अज्ञान आदि विकारों से रहित हो–प्रभो! आपकी जय हो ।।१।।

आप मोह–राग–द्वेष रूप अंधकार का नाश करने वाले वीतरागी सूर्य हो। अनन्त ज्ञान के धारण करने वाले हो, अतः पूर्णज्ञानी (सर्वज्ञ) हो तथा अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य से भी सुशोभित हो। हे प्रभो! आपकी जय हो ।।२।।

जय परमशांत मुद्रा समेत।
भविजन को निज अनुभूति हेत।।
भवि भागन वचजोगेवशाय।
तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय ।।३।।

तुम गुण चिंतत निजपर विवेक।
प्रगटै विघटै आपद अनेक ।।
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त।
सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ।।४।।

अविरुद्ध, शुद्ध, चेतन–स्वरूप।
परमात्म परम पावन अनूप ।।
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन।
स्वाभाविक परिणतिमय अछीन।।५।।

अष्टादश दोष विमुक्त धीर।
सचतुष्टयमय राजत गंभीर ।।
मुनिगणधरादि सेवत महंत।
नव केवल लब्धिरमा धरंत ।।६।।

तुम शासन सेय अमेय जीव।
शिव गये जाहिं जैहैं सदीव ।।
भवसागर में दुख छार वारि।
तारन को और न आप टारि ।।७।।

यह लखि निज दुःखगद हरणकाज।
तुमही निमित्त कारण इलाज।।
जाने तातैं मैं शरण आय।
उचरों निज दुःख जो चिर लहाय।।८।।

भव्य जीव आपकी परम शान्तमुद्रा को देखकर अपनी आत्मा की अनुभूति प्राप्त करने का लक्ष्य करते हैं। भव्य जीवों के भाग्य से और आपके वचनयोग से आपकी दिव्यध्वनि होती है, उसको श्रवण कर भव्य जीवों का भ्रम नष्ट हो जाता है ।।३।।

आपके गुणों का चिन्तवन करने से स्व और पर का भेद–विज्ञान हो जाता है, और मिथ्यात्व दशा में होने वाली अनेक आपत्तियाँ (विकार) नष्ट हो जाती हैं। आप समस्त दोषों से रहित हो, सब विकल्पों से मुक्त हो, सर्व प्रकार की महिमा धारण करने वाले हो और जगत् के भूषण (सुशोभित करने वाले) हो ।।४।।

हे परमात्मा! आप समस्त उपमाओं से रहित, परम पवित्र, शुद्ध, चेतन (ज्ञान दर्शन) मय हो। आप में किसी भी प्रकार का विरोध भाव नहीं हैं। आपने शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विकारी–भावों का अभाव कर दिया है और स्वभाव–भाव से युक्त हो गये हो, अतः कभी भी क्षीण दशा को प्राप्त होने वाले नहीं हो ।।५।।

आप अठारह दोषों से रहित हो और अनंत चतुष्टय युक्त विराजमान हो। केवलज्ञानादि नौ प्रकार के क्षायिक–भावों के धारण करने वाले होने से महान् मुनि और गणधर देवादि आपकी सेवा करते हैं ।।६।।

आपके बताये मार्ग पर चलकर अनंत जीव मुक्त हो गये हैं, हो रहे हैं और सदा काल होते रहेंगे। इस संसार रूपी समुद्र में दुःख रूपी अथाह खारा पानी भरा हुआ है। आपको छोड़कर और कोई भी इससे पार नहीं उतार सकता है ।।७।।

इस भयंकर दुःख को दूर करने में निमित्त कारण आप ही हो, ऐसा जानकर मैं आपकी शरण में आया हूँ और अनंत काल से दुःख पाया है, उसे आपसे कह रहा हूँ ।।८।।

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप।
अपनाये विधि फल पुण्य पाप ।।
निज को पर को करता पिछान।
पर में अनिष्टता इष्ट ठान ।।९।।
आकुलित भयो अज्ञान धारि।
ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।।
तन–परिणति में आपो चितार।
कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार ।।१०।।
तुमको बिन जाने जो कलेश।
पाये सो तुम जानत जिनेश।।
पशु, नारक, नर, सुरगति मँझार।
भव धर धर मर्‌यो अनंत बार ।।११।।
अब काललब्धि बलतैं दयाल।
तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद।
चाख्यो स्वातम–रस दुःख–निकंद ।।१२।।
तातैं अब ऐसी करहु नाथ।
बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव।
जग तारन को तुव विरद एव ।।१३।।
आतम के अहित विषय–कषाय।
इनमें मेरी परिणति न जाय ।।
मैं रहूं आप में आप लीन।
सो करो होउँ ज्यों निजाधीन ।।१४।।
मेरे न चाह कछु और ईश।
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश ।।
मुझ कारज के कारण सु आप।
शिव करहु हरहु मम मोहताप ।।१५।।

मैं अपनी ज्ञानस्वभावी आत्मा को भूलकर अपने आप ही संसार में भ्रमण कर रहा हूँ और मैंनें कर्मों के फल पुण्य और पाप को अपना लिया है। अपने को पर का कर्त्ता मान लिया है, और अपना कर्त्ता पर को मान लिया है और पर–पदार्थों में से ही कुछ को इष्ट मान लिया है और कुछ को अनिष्ट मान लिया है। परिणामस्वरूप अज्ञान को धारण करके स्वयं ही आकुलित हुआ हूँ, जिस प्रकार कि हरिण मृगतृष्णावश बालू को पानी समझकर अपने अज्ञान से ही दु:खी होता है। शरीर की दशा को ही अपनी दशा मानकर अपने पद (आत्म–स्वभाव) का अनुभव नहीं किया ।।९–१०।।

हे जिनेश! आपको पहिचाने बिना जो दु:ख मैंने पाये हैं, उन्हें आप जानते ही हैं। तिर्यंच गति, नरक गति, मनुष्य गति और देव गति में उत्पन्न होकर अनन्त बार मरण किया है ।।११।।

अब काललब्धि के आने पर आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, इससे मुझे बहुत ही प्रसन्नता है। मेरा अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो गया है और मेरा मन शान्त हो गया है और मैंने दु:खों को नाश करने वाली आत्मानुभूति को प्राप्त कर लिया है।।१२।।

अत: हे नाथ! अब ऐसा करो जिससे आपके चरणों के साथ का वियोग न हो। तात्पर्य यह है कि जिस मार्ग (आचरण) द्वारा आप पूर्ण सुखी हुए हैं, मैं भी वही प्राप्त करूँ। हे देव! आपके गुणों का तो कोई अन्त नहीं है और संसार से पार उतारने का तो मानो आपका विरद ही है।।१३।।

आत्मा का अहित करने वाली पाँचों इन्द्रियों के विषयों में लीनता और कषायें हैं। हे प्रभो! मैं चाहता हूँ कि इनकी ओर मेरा झुकाव न हो। मैं तो अपने में ही लीन रहूँ , जिससे मैं पूर्ण स्वाधीन हो जाऊँ ।।१४।।

मेरे हृदय में और कोई इच्छा नहीं है, बस एक रत्नत्रय निधि ही पाना चाहता हूँ। मेरे हित रूपी कार्य के निमित्त कारण आप ही हो। मेरा मोह–ताप नष्ट होकर कल्याण हो, यही भावना है।।१५।।

शशि शांतिकरन तपहरन हेत।
स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय।
त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ।।१६।।
त्रिभुवन तिहुँकाल मँझार कोय।
नहि तुम बिन निज सुखदाय होय।।
मो उर यह निश्चय भयो आज।
दुख–जलधि उतारन तुम जहाज ।।१७।।

दोहा

तुम गुणगणमणि गणपति,
गणत न पावहिं पार।।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै,
नमूँ त्रियोग सँभार ।।१८।।

जैसे चन्द्रमा स्वयमेव गर्मी कम करके शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार आपकी स्तुति करने से स्वयमेव ही आनन्द प्राप्त होता है। जैसे अमृत के पीने से रोग चला जाता है, उसी प्रकार आपका अनुभव करने से संसार–रूपी रोग चला जाता है ।।१६।।

तीनों लोकों में और तीनों कालों में आपके समान सुखदायक (सन्मार्ग–दर्शक) और कोई नहीं है। ऐसा आज मुझे निश्चय हो गया है कि आपही दु:ख–रूपी समुद्र से पार उतारने वाले जहाज हो ।।१७।।

आपके गुणों–रूपी मणियों को गिनने में गणधर देव भी समर्थ नहीं हैं, तो फिर मैं (दौलतराम) अल्पबुद्धि उनका वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ। अंत: मैं आपको मन, वचन और काय को सँभाल कर बार–बार नमस्कार करता हूँ ।।१८।।

प्रश्न - उक्त स्तुति में से कोई से २ छंद जो आपको रुचिकर लगे हों, लिखिये तथा रुचिकर होने का कारण भी बताइये।

पाठ २

आत्मा और परमात्मा

मुनिराज योगीन्दु

(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

अपभ्रंश के महाकवि अध्यात्मवेत्ता योगीन्दु के जीवन के बारे में विशेष जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं है। उनके नाम का भी कई तरह से उल्लेख मिलता है, जैसे योगीन्दु, योगीन्द्र। पर अपभ्रंश के जोइन्दु का संस्कृतानुवाद योगीन्दु ठीक बैठता है, योगीन्द्र नहीं।

योगीन्दु के समय के बारे में भी विभिन्न मत हैं। इनका काल छठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक माना जाता है।

आपके ग्रन्थों पर कुन्दकुन्द का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। योगीन्दु ने कुन्दकुन्द से बहुत कुछ लिया है। पूज्यपाद के समाधिशतक और योगीन्दु के परमात्मप्रकाश में भी घनिष्ठ समानता दिखाई देती है।

उनके द्वारा बनाये गये परमात्मप्रकाश (परमप्पयासु) और योगसार (जोगसारु) ही उनकी कीर्ति के अक्षय भंडार हैं। उन ग्रन्थों में उन्होंने अध्यात्म के गूढ़ तत्वों को सहज और सरल लोक–भाषा में जनता के समक्ष रखा है। प्रस्तुत पाठ उक्त ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है।

आत्मा और परमात्मा

प्रभाकर - हे गुरुदेव ! आत्मा और परमात्मा का स्वरूप क्या है? कृपा कर समझाइये; क्योंकि कल आपने कहा था कि यह आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर दु:खी हो रहा है।

योगीन्दु देव - हे प्रभाकर भट्ट! आत्मा को समझने की इच्छा तुम जैसे मुमुक्षु के ही होती है। जिसने चेतन–स्वरूप आत्मा की बात प्रसन्न चित्त से सुनी वह अल्पकाल में ही परमात्म–पद को प्राप्त करेगा। आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।

ज्ञानस्वभावी जीव तत्त्व को ही आत्मा कहते हैं। वह अवस्था की अपेक्षा तीन प्रकार का होता हैं :–

१. बहिरात्मा २. अंतरात्मा ३. परमात्मा

प्रभाकर- बहिरात्मा किसे कहते हैं?

योगीन्दु देव - शरीर को आत्मा तथा अन्य पदार्थों और रागादि में अपनापन मानने वाला या शरीर और आत्मा को एक मानने वाला जीव ही बहिरात्मा है। वह अज्ञानी (मिथ्यादृष्टि) है।

आत्मा को छोड़कर अन्य बाह्य पदार्थों में आत्मपन (अपनापन) मानने के कारण ही यह बहिरात्मा कहलाता हैं। अनादिकाल से यह आत्मा शरीर की उत्पत्ति में ही अपनी उत्पत्ति और शरीर के नाश में ही अपना नाश तथा शरीर से संबंध रखने वालों को अपना मानता आ रहा है। जब तक यह भूल न निकले तब तक जीव बहिरात्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि रहता है।

प्रभाकर - " बहिरात्मपन छोड़ना चाहिये " यह तो ठीक पर.....।

योगीन्दु देव - बहिरात्मपन छोड़कर अंतरात्मा बनना चाहिये।

जो व्यक्ति भेद–विज्ञान के बल से आत्मा को देहादिक से भिन्न, ज्ञान और आनन्द–स्वभावी जानता है, मानता है और अनुभव करता है; वह ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) आत्मा ही अंतरात्मा है। आत्मा में ही आत्मपन अर्थात् अपनापन मानने के कारण तथा आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में भी अपनापन की मान्यता छोड़ देने के कारण ही वह अंतरात्मा कहलाता है। अंतरात्मा तीन प्रकार के होते है :–

१. उत्तम अंतरात्मा २. मध्यम अंतरात्मा ३. जघन्य अंतरात्मा ।

अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित उत्कृष्ट शुद्धोपयोगी क्षीणकषाय मुनि (बारहवें गुणस्थानवर्ती) उत्तम अंतरात्मा हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थानवर्ती) जघन्य अंतरात्मा हैं। उक्त दोनों की मध्यदशावर्ती देशव्रती श्रावक और मुनिराज (पाँचवें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती) मध्यम अंतरात्मा हैं।

प्रभाकर - अंतरात्मा बनने से लाभ क्या है?

योगीन्दु देव - यही अंतरात्मा गृहस्थावस्था त्यागकर शुद्धोपयोगरूप मुनि–अवस्था धारण कर निज स्वभाव साधन द्वारा परमात्म–पद प्राप्त करता है अर्थात् परमात्मा बन जाता है और इसके अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य प्रकट हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि यही अंतरात्मा अपने पुरुषार्थ द्वारा आगे बढ़कर परमात्मा बनता है।

प्रभाकर - परमात्मा बनने से लाभ क्या है?

योगीन्दु देव - प्रत्येक आत्मा सुखी होना चाहता है। परमात्मा पूर्ण निराकुल होने से अनंत सुखी है। परमात्मा दो प्रकार के होते हैं –

(१) सकल परमात्मा (२) निकल परमात्मा।

चार घातिया कर्मों का अभाव करने वाले श्री अरहंत भगवान को शरीर सहित होने से सकल परमात्मा कहते हैं और कर्मों से रहित सिद्ध भगवान को शरीर रहित होने से निकल परमात्मा कहते हैं।

बहिरात्मा संसारमार्गी होने से बहिरात्मपन सर्वथा हेय है। अंतरात्मा मुक्तिमार्ग का पथिक है, अत: अंतरात्मपन कथंचित् उपादेय है तथा परमात्मपन अतीन्द्रिय सुखमय होने से सर्वथा उपादेय है।

अत: सब को पुरुषार्थपूर्वक बहिरात्मपन छोड़कर अन्तरात्मा बनकर परमात्मा बनने की भावना करनी चाहिये।

प्रश्न -

१. आत्मा किसे कहते हैं? वे कितने प्रकार के होते हैं? बहिरात्मा का स्वरूप लिखिये।
२. अंतरात्मा का लक्षण और भेद स्पष्ट कीजिये।
३. परमात्मा किसे कहते हैं? सकल व निकल परमात्मा को स्पष्ट कीजिये।
४. मुनिराज योगीन्दु के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

पाठ ३

सात तत्त्व

आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी

(व्यक्तित्व और कर्तृत्व)

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं, गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामीमुनीश्वरम्।।

कम से कम लिखकर अधिक से अधिक प्रसिद्धि पाने वाले आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थ सूत्र से जैन समाज जितना अधिक परिचित है, उनके जीवन परिचय के संबंध में उतना ही अपरिचित है।

ये कुन्दकुन्दाचार्य के पट्ट शिष्य थे तथा विक्रम की प्रथम शताब्दी के अन्तिम काल में तथा द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत–भूमि को पवित्र कर रहे थे।

आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी उन गौरवशाली आचार्यों में हैं, जिन्हें समग्र आचार्य परम्परा में पूर्ण प्रामाणिकता और सन्मान प्राप्त है। जो महत्त्व वैदिकों में गीता का, ईसाइयों में बाइबिल का और मुसलमानों में कुरान का माना जाता है, वही महत्व जैन परम्परा में गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थ सूत्र को प्राप्त है। इसका दूसरा नाम मोक्षशास्त्र भी है। यह संस्कृत भाषा का सर्वप्रथम जैन ग्रन्थ है।

यह ग्रन्थराज जैन समाज द्वारा संचालित सभी परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रमों में निर्धारित है और सारे भारतवर्ष के जैन विद्यालयों में पढ़ाया जाता है।

प्रस्तुत अंश तत्त्वार्थ सूत्र के आधार पर लिखा गया है।

सात तत्त्व

प्रवचनकार - संसार में समस्त प्राणी दुःखी दिखाई देते हैं, और वे दुःख से बचने का उपाय भी करते हैं। परन्तु प्रयोजनभूत तत्त्वों की सही जानकारी एवं श्रद्धा के बिना दुःख दूर होता नहीं।

मुमुक्षु - ये प्रयोजनभूत तत्त्व क्या हैं जिनकी जानकारी और सही श्रद्धा के बिना दुःख दूर नहीं हो सकता?

प्रवचनकार - दुःख दूर करना और सुखी होना ही सच्चा प्रयोजन है और ऐसे तत्त्व जिनकी सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान बिना हमारा दुःख दूर न हो सके और हम सुखी न हो सकें, उन्हें ही प्रयोजनभूत तत्त्व कहते हैं। तत्त्व माने वस्तु का सच्चा स्वरूप। जो वस्तु जैसी है, उसका जो भाव, वही तत्त्व है।

वे तत्त्व सात होते हैं, जैसा कि तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी ने कहा है –

" जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् " ।।१।। ४।।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

प्रश्नकर्ता - कृपया संक्षेप में इनका स्वरूप बताइये।

प्रवचनकार - जीव तत्त्व ज्ञान–दर्शन स्वभावी आत्मा को कहते हैं। ज्ञान–दर्शन स्वभाव से रहित तथा आत्मा से भिन्न समस्त द्रव्य (पदार्थ) अजीव तत्त्व कहलाते हैं। पुद्गलादि समस्त पदार्थ अजीव है।

इन शरीरादि सभी अजीव पदार्थों से भिन्न चेतन तत्त्व ही आत्मा है। वह आत्मा ही मैं हूँ, मुझसे भिन्न पुद्गलादि पाँच द्रव्य अजीव हैं।

सामान्य रूप से तो जीव अजीव दो ही तत्त्व हैं। आस्रवादिक तो जीव अजीव के ही विशेष हैं।

शंकाकार - यदि आस्रवादिक जीव अजीव के ही विशेष हैं, तो इनको पृथक् क्यों कहा है?

प्रवचनकार - यहाँ तो मोक्ष का प्रयोजन है। अतः आस्रवादिक पाँच पर्यायरूप विशेष तत्त्व कहे। उक्त सातों के यथार्थ श्रद्धान बिना मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। क्योंकि जीव और अजीव को जाने बिना अपने–पराये का भेद–विज्ञान कैसे हो? मोक्ष को पहिचाने बिना और हित रूप माने बिना उसका उपाय कैसे करे? मोक्ष का उपाय संवर निर्जरा हैं, अतः उनका जानना भी आवश्यक है। तथा आस्रव का अभाव सो संवर है, और बंध का एकदेश अभाव सो निर्जरा है, अतः इनको जाने बिना इनको छोड़ संवर निर्जरा रूप कैसे प्रवर्ते?

शंकाकार - हमने तो प्रवचन में सुना था कि आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध, शुद्धाशुद्ध पर्यायों से पृथक् है, वही आश्रय करने योग्य है।

प्रवचनकार - भाई, वह द्रव्य–दृष्टि के विषय की बात है। आत्मद्रव्य प्रमाण–दृष्टि से शुद्धाशुद्ध पर्यायों से युक्त है।

जिज्ञासु - यह द्रव्य–दृष्टि क्या है?

प्रवचनकार - सप्त तत्त्वों को यथार्थ जानकर, समस्त परपदार्थ और शुभाशुभ आस्रवादिक विकारी भाव तथा संवरादिक अविकारी भावों से भी पृथक् ज्ञानानन्द–स्वभावी, त्रिकाली ध्रुव आत्मतत्त्व ही दृष्टि का विषय है। इस दृष्टि से कथन में पर, विकार और भेद को भी गौण करके मात्र त्रैकालिक ज्ञान–स्वभाव को आत्मा कहा जाता है और उसके आश्रय से ही धर्म (संवर निर्जरा) प्रकट होता है।

जिन मोह–राग–द्वेष भावों के निमित्त से ज्ञानावरणादि कर्म आते हैं, उन मोह–राग–द्वेष भावों को तो भावास्रव कहते हैं। उसके निमित्त से ज्ञानावरणादि कर्मों का स्वयं आना द्रव्यास्रव है।

इसी प्रकार आत्मा का अज्ञान, मोह–राग–द्वेष, पुण्य–पाप आदि विभाव भावों में रुक जाना सो भाव–बंध है और उसके निमित्त से पुद्गल का स्वयं कर्मरूप बंधना सो द्रव्य–बंध है।

शंकाकार - पुण्य–पाप को बंध के साथ क्यों जोड़ दिया?

प्रवचनकार - भाई! पुण्य और पाप, आस्रव–बंध के ही अवान्तर भेद हैं। शुभ राग से पुण्य का आस्रव और बंध होता है और अशुभ राग, द्वेष और मोह से पाप का आस्रव और बंध होता है। शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार का राग अर्थात् पुण्य और पाप दोनों ही छोड़ने योग्य हैं, क्योकि वे आस्रव और बंध तत्त्व हैं।

पुण्य–पाप के विकारी भाव (आस्रव) को आत्मा के शुद्ध (वीतरागी) भावों से रोकना सो भाव–संवर है और तदनुसार नये कर्मों का स्वयं आना रुक जाना द्रव्य–संवर है।

इसी प्रकार ज्ञानानन्द–स्वभावी आत्मा के लक्ष्य के बल से स्वरूप–स्थिरता की वृद्धि द्वारा आंशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध (शुभाशुभ) अवस्था का आंशिक नाश करना सो भाव–निर्जरा है और उसका निमित्त पाकर जड़ कर्म का अंशत: खिर जाना सो द्रव्य–निर्जरा है।

प्रश्नकर्ता - और मोक्ष?

प्रवचनकार - अशुद्ध दशा का सर्वथा सम्पूर्ण नाश होकर आत्मा की पूर्ण निर्मल पवित्र दशा का प्रकट होना भाव–मोक्ष है और निमित्त कारण द्रव्य–कर्म का सर्वथा नाश (अभाव) होना सो द्रव्य–मोक्ष है।

उक्त सातों तत्त्वों को भली भाँति जानकर एवं समस्त परतत्त्वों पर से दृष्टि हटाकर अपने आत्मतत्त्व पर दृष्टि ले जाना ही सच्चा सुख प्राप्त करने का सच्चा उपाय है।

प्रश्न -

१. तत्त्व किसे कहते है? वे कितने प्रकार के हैं?
२. 'प्रयोजनभूत' शब्द का क्या आशय है?
३. पुण्य और पाप का अन्तर्भाव किन तत्त्वों में होता है और कैसे? स्पष्ट कीजिये।
४. हेय और उपादेय तत्त्वों को बताइये।
५. द्रव्य–संवर, भाव–निर्जरा, भाव–मोक्ष, द्रव्यास्रव तथा भाव–बंध को स्पष्ट कीजिये।
६. आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डालिये।

पाठ ४

षट् आवश्यक

(मंदिरजी में शास्त्र–प्रवचन हो रहा है। पंडितजी शास्त्र–प्रवचन कर रहे हैं और सब श्रोता रुचिपूर्वक श्रवण कर रहे हैं।)

प्रवचनकार - संसार के समस्त प्राणी सुख चाहते हैं और दु:ख से डरते हैं, और उन दु:खों से बचने के लिये उपाय भी करते हैं, पर उनसे बचने का सही उपाय नहीं जानते हैं, अत: दु:खी ही रहते हैं।

एक श्रोता - तो फिर दु:ख से बचने का सच्चा उपाय क्या है?

प्रवचनकार - आत्मा को समझकर उसमें लीन होना ही सच्चा उपाय है और यही निश्चय से आवश्यक कर्त्तव्य है।

दूसरा श्रोता - आप तो साधुओं की बात करने लगे, हम सरीखे गृहस्थ सच्चा सुख प्राप्त करने के लिये क्या करें?

प्रवचनकार - दु:ख मेटने और सच्चा सुख प्राप्त करने का उपाय तो सब के लिये एक ही है।

यह बात अलग है कि मुनिराज अपने उग्र पुरुषार्थ से आत्मा का सुख विशेष प्राप्त कर लेते है और गृहस्थ अपनी भूमिकानुसार अंशत: सुख प्राप्त करता है।

उक्त मार्ग में चलने वाले सम्यग्दृष्टि श्रावक के आंशिक शुद्धिरूप निश्चय आवश्यक के साथ–साथ शुभ विकल्प भी आते हैं। उन्हें व्यवहार–आवश्यक कहते है। वे छह प्रकार के होते हैं :–

देवपूजा गुरुपास्ति, स्वाध्याय: संयमस्तप:।
दानञ्चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने।।

१. देवपूजा २. गुरु की उपासना ३. स्वाध्याय ४. संयम ५. तप ६. दान

श्रोता - कृपया इन्हें संक्षेप में समझा दीजिये।

प्रवचनकार - ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि निश्चय से भाव–देवपूजा है और सच्चे देव का स्वरूप समझकर उनके गुणों का स्तवन ही व्यवहार से भाव–देवपूजा है। ज्ञानी श्रावक वीतरागता और सर्वज्ञता आदि गुणों का स्तवन करते हुये विधिपूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजन करते हैं उसे द्रव्यपूजा कहते हैं।

इसी प्रकार ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि ही निश्चय से गुरु–उपासना है और गुरु का सच्चा स्वरूप समझकर उनकी उपासना करना ही व्यवहार–गुरुउपासना है।

तुम्हें पहिले बताया जा चुका है कि अरहंत और सिद्ध भगवान देव कहलाते हैं और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु गुरु कहलाते हैं।

ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि ही निश्चय से स्वाध्याय है तथा जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये तत्त्व का निरूपण करने वाले शास्त्रों का अध्ययन, मनन करना व्यवहार–स्वाध्याय है।

श्रोता - यह तो तीन हुए।

प्रवचनकार - सुनो! ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि ही निश्चय से संयम है और उसके साथ होने वाले भूमिकानुसार हिंसादि से विरति एवं इन्द्रिय–निग्रह व्यवहार–संयम है।

ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि अर्थात् शुभाशुभ इच्छाओं का निरोध (उत्पन्न नहीं होना) निश्चय–तप है तथा उसके साथ होने वाले अनशनादि संबंधी शुभभाव व्यवहार–तप है।

ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि, वह निश्चय से अपने को शुद्धता का दान है तथा स्व और पर के अनुग्रह के लिये धनादि देना व्यवहार–दान है। वह चार प्रकार का होता है :–

१. आहारदान २. ज्ञानदान ३. औषधिदान ४. अभयदान

श्रोता - निश्चय और व्यवहार आवश्यक में क्या अंतर है?

प्रवचनकार - निश्चय आवश्यक तो शुद्ध धर्म–परिणति है, अतः बंध के अभाव का कारण है तथा व्यवहार आवश्यक पुण्य बंध का कारण है। सच्चे आवश्यक ज्ञानी जीव के ही होते हैं। पर देवपूजनादि करने का भाव अज्ञानी के भी होता हैं तथा मंद कषाय और शुभ भावानुसार पुण्य बंध भी होता है, पर वे सच्चे धर्म नहीं कहे जा सकते।

श्रोता- यदि आप ऐसा कहोगें तो अज्ञानी जीव देवपूजनादि आवश्यक कर्मों को छोड़ देंगे।

प्रवचनकार - भाई! उपदेश तो ऊँचा चढ़ने को दिया जाता है। अतः देवपूजनादि के शुभ भाव छोड़कर यदि अशुभ भाव में जावेंगे तो पाप बंध करेंगे। अतः देवपूजनादि छोड़ना ठीक नहीं है।

प्रश्न -

१. छह आवश्यकों के नाम लिखकर उनकी परिभाषायें दीजिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पाठ ५

कर्म

सिद्धांतचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य

(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

जह चक्केण य चक्की, छक्खंडं साहियं अविघेण।
तह मइ चक्केण मया, छक्खंडं साहियं सम्म।।[१]

"जिस प्रकार सुदर्शनचक्र के द्वारा चक्रवर्ती छह खंडों को साधता (जीत लेता) है, उसी प्रकार मैंनें (नेमिचन्द्र ने) अपने बुद्धिरूपी चक्र से षट्खण्डागमरूप महान् सिद्धान्त को साधा है।" अतः वे 'सिद्धान्त–चक्रवर्ती' कहलाए। ये प्रसिद्ध जैन राजा चामुण्डराय के समकालीन थे और चामुण्डराय का समय ग्यारहवीं सदी का पूर्वार्ध हैं, अतः आचार्य नेमिचन्द्र भी इसी समय भारत–भूमि को अलंकृत कर रहे थे।

ये कोई साधारण विद्वान् नहीं थे; इनके द्वारा रचित गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि उपलब्ध ग्रन्थ उनकी असाधारण विद्वत्ता और 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' पदवी को सार्थक सिद्ध कर रहे हैं।

इन्होंने चामुण्डराय के आग्रह पर सिद्धान्त ग्रन्थों का सार लेकर गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना की है, जिसके जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड नामक दो महा अधिकार हैं। इनका दूसरा नाम पंचसंग्रह भी है।

इस ग्रन्थ पर मुख्यतः टीकाएँ उपलब्ध हैं:–

(१) अभयचंद्राचार्य की संस्कृत टीका 'मंदप्रबोधिका'।
(२) केशववर्णी की संस्कृत मिश्रित कन्नड़ी टीका 'जीवतत्त्वप्रदीपिका'।
(३) नेमिचन्द्राचार्य[२] की संस्कृत टीका 'जीवतत्त्वप्रदीपिका'।
(४) आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी की भाषाटीका 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका'।

यह पाठ गोम्मटसार कर्मकाण्ड के आधार पर लिखा गया है।

---

१ गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ३९७।
२ ये नेमिचंद्राचार्य सिद्धान्तचक्रवर्ती, नेमिचंद्राचार्य से भिन्न हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

कर्म

चामुण्डराय - महाराज! यह आत्मा दु:खी क्यों है? आत्मा का हित क्या है? कृपा कर बताइये।

आचार्य नेमिचन्द्र - आत्मा का हित निराकुल सुख है, वह आत्मा के आश्रय से ही प्राप्त किया जा सकता है। पर यह जीव अपने ज्ञानस्वभावी आत्मा को भूलकर मोह–राग–द्वेष रूप विकारी भावों को करता है, अत: दु:खी है।

चामुण्डराय - हमने तो सुना है कि दु:ख का कारण कर्म है।

आचार्य नेमिचन्द्र - नहीं भाई! जब यह आत्मा अपने को भूलकर स्वयं मोह–राग–द्वेष भाव रूप विकारी परिणमन करता है, तब कर्म का उदय उसमें निमित्त कहा जाता है। कर्म थोड़े ही जबरदस्ती आत्मा को विकार कराते हैं।

चामुण्डराय - यह निमित्त क्या होता है?

आचार्य नेमिचन्द्र - जब पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमे, तब कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ सके उसे निमित्तकारण कहते हैं। अत: जब आत्मा स्वयं अपनी भूल से विकारादि रूप (दु:खादि रूप) परिणमे, तब उसमें कर्म को निमित्त कहा जाता है।

चामुण्डराय - यह तो ठीक है कि यह आत्मा अपनी भूल से स्वयं दु:खी है, ज्ञानावरणादि कर्मों के कारण नहीं। पर वह भूल क्या है?

आचार्य नेमिचन्द्र - अपने को भूलकर पर में इष्ट और अनिष्ट कल्पना करके मोह–राग–द्वेष रूप भाव–कर्म (विभाव भाव रूप परिणमन) करना ही आत्मा की भूल है।

चामुण्डराय - भाव–कर्म क्या होता है?

आचार्य नेमिचन्द्र - कर्म के उदय में यह जीव मोह–राग–द्वेष रूपी विकारी भाव रूप होता है, उन्हें भाव–कर्म कहते हैं और उन मोह–राग–द्वेष भावों का निमित्त पाकर कार्माण वर्गणा (कर्मरज) कर्मरूप परिणमित होकर आत्मा से सम्बद्ध हो जाती हैं, उन्हें द्रव्य–कर्म कहते हैं।

चामुण्डराय - तो कर्मबंध के निमित्त, आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह–राग–द्वेष भाव तो भाव–कर्म हैं और कार्माण वर्गणा का कर्मरूप परिणमित रजपिण्ड द्रव्य–कर्म?

आचार्य नेमिचन्द्र - हाँ! मूलरूप से ये कर्म आठ प्रकार के होते हैं। इन आठ प्रकार के कर्मों में ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय तो घातिया कर्म कहलाते हैं और वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघातिया कर्म कहलाते हैं।

चामुण्डराय - घातिया और अघातिया से क्या तात्पर्य?

आचार्य नेमिचन्द्र - जो जीव के अनुजीवी गुणों को घात करने में निमित्त हों वे घाति कर्म हैं, और आत्मा के अनुजीवी गुणों के घात में निमित्त न हों उन्हें अघातिया कर्म कहते हैं।

चामुण्डराय - ज्ञान पर आवरण डालने वाले कर्म को ज्ञानावरण और दर्शन पर आवरण डालने वाले कर्म को दर्शनावरण कहते होंगे?

आचार्य नेमिचन्द्र - सुनो ! जब आत्मा स्वयं अपने ज्ञान भाव का घात करता है, अर्थात् ज्ञान–शक्ति को व्यक्त नहीं करता तब आत्मा के ज्ञानगुण के घात में जिस कर्म का उदय निमित्त हो उसे ज्ञानावरण कहते हैं।

और जब आत्मा स्वयं अपने दर्शन–गुण (भाव) का घात करता है तब दर्शन–गुण के घात में जिस कर्म का उदय निमित्त हो उसे दर्शनावरण कहते हैं। ज्ञानावरणी पांच प्रकार का और दर्शनावरणी नौ प्रकार का होता है।

चामुण्डराय - और मोहनीय.....?

आचार्य नेमिचन्द्र - जीव अपने स्वरूप को भूल कर अन्य को अपना माने या स्वरूपाचरण में असावधानी करे तब जिस कर्म का उदय निमित्त हो उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है : १. दर्शन मोहनीय, २. चारित्र मोहनीय। मिथ्यात्व आदि तीन भेद दर्शन मोहनीय के हैं, २५ कषायें चारित्र मोहनीय के भेद हैं।

चामुंडराय - अब घातिया कर्मों में एक अन्तराय और रह गया?

आचार्य नेमिचन्द्र - जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य के विघ्न में जिस कर्म का उदय निमित्त हो, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। यह पांच प्रकार का होता है।

चामुण्डराय - अब कृपया अघातिया कर्मों को भी.....?

आचार्य नेमिचन्द्र - हाँ! हाँ!! सुनो!

जब आत्मा स्वयं मोह भाव के द्वारा आकुलता करता है तब अनुकूलता, प्रतिकूलता रूप संयोग प्राप्त होने में जिस कर्म का उदय निमित्त हो उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। यह साता वेदनीय और असाता वेदनीय के भेद से दो प्रकार का होता है।

जीव अपनी योग्यता से जब नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य या देव शरीर में रुका रहे तब कर्म का उदय निमित्त हो उसे आयु कर्म कहते हैं। यह भी नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु के भेद से चार प्रकार का है।

तथा जिस शरीर में जीव हो उस शरीरादि की रचना में जिस कर्म का उदय निमित्त हो उसे नाम कर्म कहते हैं। यह शुभ नाम कर्म और अशुभ नाम कर्म के भेद से दो प्रकार का होता है। वैसे इसकी प्रकृतियाँ ९३ हैं।

और जीव को उच्च या नीच आचरण वाले कुल में पैदा होने में जिस कर्म का उदय निमित्त हो उसे गोत्र कर्म कहते हैं। यह भी उच्चगोत्र और नीच गोत्र, इस प्रकार दो भेद वाला है।

चामुण्डराय - तो बस, कर्मों के आठ ही प्रकार हैं?

आचार्य नेमिचन्द्र - इन आठ भेदों में भी प्रभेद हैं, जिन्हें प्रकृतियाँ कहते हैं और वे १४८ होती हैं। और भी कई प्रकार के भेदों द्वारा इन्हें समझा जा सकता हैं, अभी इतना ही पर्याप्त है। यदि विस्तार से जानने की इच्छा हो तो गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिये।

प्रश्न -

१. कर्म कितने प्रकार के होते हैं? नाम सहित गिनाइये।
२. द्रव्य कर्म और भाव कर्म में क्या अंतर है?
३. क्या कर्म आत्मा को जबर्दस्ती विकार कराते हैं?
४. ज्ञानावरणी, मोहनीय एवं आयु कर्म की परिभाषाएँ लिखिये।
५. सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

पाठ ६ रक्षाबंधन

अध्यापक - सर्व छात्रों को सूचित किया जाता है कि कल रक्षाबंधन महापर्व है। इस दिन अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों का उपसर्ग दूर हुआ था। अत: यह दिन हमारी खुशी का दिन है। इसके उपलक्ष में कल शाला का अवकाश रहेगा।

छात्र - गुरुदेव! अकंपनाचार्य कौन थे, उन पर कैसा उपसर्ग आया था, वह कैसे दूर हुआ? कृपया संक्षेप में समझाइये।

अध्यापक - सुनो!

अकंपनाचार्य एक दिगम्बर संत थे, उनके साथ सात सौ मुनियों का संघ था और वे उसके आचार्य थे। एक बार वे संघ सहित विहार करते हुए उज्जैन पहुंचे। उस समय उज्जैनी के राजा श्रीवर्मा थे। उनके यहां चार मंत्री थे– जिनके नाम थे – बलि, नमुचि, बृहस्पति और प्रह्लाद।

जब राजा ने मुनियों के आगमन का समाचार सुना तो वह सदल–बल उनके दर्शनों को पहुंचा। चारों मंत्री भी साथ थे। सभी मुनिराज आत्मध्यान में मग्न थे। अत: प्रवचन–चर्चा का कोई प्रसंग न बना।

मंत्रिगण मुनियों के आस्थावान न थे, अत: उन्होंने राजा को भड़काना चाहा और कहा "मौनं मूर्खस्य भूषणम्"– मौन मूर्खता छिपाने का अच्छा उपाय है, यही सोचकर साधु लोग चुप रहे हैं।

श्रुतसागर मुनिराज आहार करके आरहे थे। उन्हें देख एक मंत्री बोला – एक बैल (मूर्ख) वह आरहा है और वे मंत्री मुनिराज से वाद–विवाद के लिए उलझ पड़े। फिर क्या था, मुनिराज ने अपनी प्रबल युक्तियों द्वारा शीघ्र ही उनका मद खंडित कर दिया।

राजा के सामने उन चारों का अभिमान चूर्ण हो गया। उस समय तो वे लोग चुपचाप चले गए पर रात्रि में चारों ही ने वहाँ आकर मुनिराज पर प्रहार करने को एक साथ तलवार उठाई, किन्तु उनके हाथ कीलित होकर उठे ही रह गये। प्रातः यह समाचार जब राजा और जनता ने सुना तो सब वहाँ आगये। मुनिराज की सब ने स्तुति की और राजा ने चारों मंत्रीयों को देशनिकाला दे दिया।

छात्र - वे मुनिराज रात को वहाँ कैसे रहे? उन्हें तो जहाँ संघ ठहरा था, वहीं ध्यानस्थ रहना चाहिये था।

अध्यापक - जब उन्होंने उक्त विवाद की चर्चा आचार्यश्री से की तो उन्होंने कहा कि तुम्हें उनसे चर्चा ही नहीं करनी चाहिये थी। क्योंकि जिस प्रकार साँप को दूध पिलाने से विष ही बनता है, उसी प्रकार तीव्र कषायी अज्ञानी जीवों से की गई तत्त्वचर्चा उनके क्रोध को ही बढ़ाती है। हो सकता है कि वे कषाय की तीव्रता में कोई उपसर्ग करें। अतः तुम उसी स्थान पर जाकर आज रात को ध्यानस्थ रहो।

छात्र - फिर.....?

अध्यापक - वे चारों मंत्री हस्तिनागपुर के राजा पद्मराय के यहाँ जाकर कार्य करने लगे। किसी बात पर प्रसन्न होकर पद्मराय ने उन्हें मुँह माँगा वरदान माँगने को कहा। उन्होंने उसे यथासमय लेने की अनुमति लेली।

एक बार वे ही अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनिराज विहार करते हुए हस्तिनागपुर पहुँचे। उन्हें आया देख बलि ने राजा पद्मराय से सात दिन के लिए राज्य माँग लिया। राज्य पाकर वह मुनिराजों पर घोर उपसर्ग करने लगा।

तब राजा पद्मराय के भाई जो पहिले मुनि हो गये थे, उन मुनिराज विष्णकुमार ने उनकी रक्षा की।

छात्र - ऐसे दुष्ट शक्तिशाली राजा से निःशस्त्र मुनिराज ने कैसे रक्षा की?

अध्यापक - मुनिराज को विक्रिया ऋद्धि प्राप्त थी।

छात्र - विक्रिया ऋद्धि क्या होती है?

अध्यापक - विक्रिया ऋद्धि उसे कहते हैं जिसके बल से अपने शरीर को चाहे जितना बड़ा या छोटा बना लें।

मुनिराज ने अपना पद त्यागकर बावनिया[१] का भेष बनाया और बलि के दरबार में पहुँचे। बलि ने उनसे इच्छानुसार वस्तु माँगने की प्रार्थना की। उन्होंने अपने कदमों से तीन कदम भूमि माँगी। जब बलि ने तीन कदम भूमि देना स्वीकार कर लिया तो उन्होंने अपने शरीर को बढ़ा लिया और समस्त भूमि को दो पगों मैं ही नाप लिया। इस तरह बलि को परास्त कर मुनिराजों की रक्षा की। वह दिन श्रावण की पूर्णिमा का था। अतः उसी दिन से रक्षाबंधन पर्व चल पड़ा। मुनिराजों की रक्षा हुई और बलि का बंधन हुआ।

छात्र - क्या मुनि की भूमिका में भी यह सब हो सकता है?

अध्यापक - नहीं भाई! तुमने ध्यान से नहीं सुना। हमने कहा था न कि उन्होंने मुनिपद छोड़कर बावनिया का भेष बनाया। यह कार्य उनके पद के योग्य न था, तभी तो उनको प्रायश्चित्त लेना पड़ा, दुबारा दीक्षा लेनी पड़ी।

छात्र - धन्य है उन मुनि विष्णुकुमार को।

अध्यापक - वास्तव में धन्य तो वे अकंपनाचार्य आदि मुनिराज हैं, जिन्हें इतनी विपत्तियाँ भी आत्मध्यान से न डिगा सकीं।

छात्र - हाँ! और वे श्रुतसागर मुनि, जिन्होंने बलि आदि से विवाद कर उनका मद खंडित किया।

अध्यापक - उनकी विद्वत्ता तो प्रशंसनीय है पर दुष्टों से उलझना नहीं चाहिये था। आत्मा की साधना करने वाले को दुष्टों से उलझना ठीक नहीं।

छात्र - क्यों?

अध्यापक - देखो न, उसी के परिणामस्वरूप तो इतना झगड़ा हुआ। अतः प्रत्येक आत्मार्थी को चाहिये कि वह जगत् के प्रपंचों से दूर रहकर तत्त्वाभ्यास में प्रयत्नशील रहे। यही संसार–बंधन से रक्षा का सच्चा उपाय है।

प्रश्न -

१. रक्षाबंधन कथा अपने शब्दों में लिखिये।
२. मुनि विष्णुकुमार को उपसर्ग निवारणार्थ मुनिपद क्यों छोड़ना पड़ा?
३. श्रुतसागर मुनिराज को अकंपनाचार्य ने वाद–विवाद के स्थान पर जाकर रात्रि में ध्यानस्थ होने का आदेश क्यों दिया?
४. उक्त कथा पढ़ कर जो भाव पैदा होते हैं, उन्हें व्यक्त कीजिये।

---

[१] जिसका शरीर बहुत छोटा बावन अंगुल का होता हैं, उसको बावनिया कहते हैं।

पाठ ७

जम्बूस्वामी

कविवर पं॰ राजमलजी पाण्डे

(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

" पांडे राजमल्ल जिनधर्मी , नाटक समयसार के मर्मी "

– बनारसीदास

राजस्थान के जिन प्रमुख विद्वानों ने आत्म–साधना के अनुरूप साहित्य–आराधना को अपना जीवन अर्पित किया है, उनमें पं॰ राजमलजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका प्रमुख निवासस्थान ढूँढाहढ़ प्रदेश का वैराट नगर और मातृभाषा ढूँढारी रही है। संस्कृत और प्राकृत भाषा के भी ये उच्चकोटि के विद्वान् थे।

ये १७वीं सदी के प्रमुख विद्वान् बनारसीदास के पूर्वकालीन थे। इनका पहिला ग्रन्थ जम्बूस्वामी चरित्र सं॰ १६३३ में पूर्ण हुआ था, अतः इनका जन्म निश्चिततया १७वीं सदी के प्रारंभ में ही हुआ होगा।

इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। ये कवि, टीकाकार, विद्वान् और वक्ता सब एक साथ थे। इनकी कविता में काव्यत्व के साथ–साथ अध्यात्म तथा गंभीर तत्त्वों का गूढ विवेचन है। इनके द्वारा रचित निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं:–

१. जम्बूस्वामी चरित्र
२. छंदोविद्या
३. अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड
४. तत्त्वार्थसूत्र टीका
५. समयसारकलश बालबोध टीका
६. पंचाध्यायी

प्रस्तुत पाठ आपके द्वारा रचित जम्बूस्वामी चरित्र के आधार पर लिखा गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

जम्बूस्वामी

बहिन - अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ थे। उनके बाद भी कोई पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हुआ?

भाई - हाँ! हाँ!! क्यों नहीं हुए? उनके बाद गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी पूर्ण वीतरागी और केवलज्ञानी हुए। इस युग के अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ही हैं।

बहिन - तो महावीर स्वामी के समान जम्बूस्वामी भी राजकुमार होंगे?

भाई - नहीं बहिन, वे तो राजगृह नगर के एक राजमान्य सेठ के पुत्र थे। उनके पिता का नाम अर्हद्दास और माता का नाम जिनमती था। जम्बूकुमार का जन्म फाल्गुन की पूर्णिमा को हुआ था।

श्रेष्ठिपुत्र जम्बूकुमार का राजा श्रेणिक के दरबार में एवं तत्कालीन समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। नगर के अनेक श्रीमंत अपनी गुणवती कन्याओं की शादी जम्बूकुमार से करना चाहते थे तथा चार कन्याओं की सगाई भी उनसे पक्की हो चुकी थी पर.....।

बहिन - पर क्या?

भाई - पर वे तो बचपन से ही वैराग्य रस में पगे हुए थे। उनका मन तो आत्मा के अनन्त अतीन्द्रिय आनंद के लिए तड़प रहा था, अतः उन्होंने शादी करने से साफ इन्कार कर दिया।

बहिन - इन्कार कर दिया? पक्की सगाई तोड़ दी? विवाह नहीं किया?

भाई - वे तो यही चाहते थे कि विवाह न करूँ पर जब कन्याओं ने यह समाचार सुना तो वे भी बोलीं कि यदि शादी होगी तो जम्बूकुमार से अन्यथा नहीं।

बहिन - फिर..... ?

भाई - फिर क्या? चारों लड़कियों के माता–पिता और जम्बूकुमार के माता–पिता ने अति आग्रह किया कि चाहे तुम बाद में दीक्षा ले लेना पर शादी से इन्कार न करो, क्योंकि वे जानते थे कि सर्वांगसुन्दरी कन्यायें अपने रूप और गुणों द्वारा जम्बूकुमार का मन रंजायमान कर लेंगी और फिर जम्बूकुमार वैराग्य की बातें भूल जावेंगे, पर .....।

बहिन - पर क्या ?

भाई - पर जम्बूकुमार ने शादी करना तो स्वीकार कर लिया किन्तु उनके मन को सांसारिक विषयवासनायें अपनी ओर खींच न सकीं।

बहिन - तो क्या शादी नहीं हुई ?

भाई - शादी तो हुई पर दूसरे ही दिन जम्बूकुमार घर–बार, कुटुम्ब–परिवार, धन–धान्य और देवांगना–तुल्य चारों स्त्रियों को त्याग कर नग्न दिगम्बर साधु हो गये।

बहिन - उनकी पत्नियों के नाम क्या थे? क्या उन्होंने उन्हें दीक्षा लेने से रोका नहीं ?

भाई - उनके नाम पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्री थे। उन्होंने अपने हाव–भाव, रूप–लावण्य, सेवा–भाव और बुद्धि–चतुराई से पूरा–पूरा प्रयत्न किया, पर आत्मानन्द में मग्न रहने के अभिलाषी जम्बूकुमार के मन को वे विचलित न कर सकीं।

बहिन - ठीक ही है! रागियों का राग ज्ञानियों को क्या प्रभावित करेगा? ज्ञान और वैराग्य की किरणें तो अज्ञान और राग को नाश करने में समर्थ होती हैं।

भाई - ठीक कहती हो बहिन! उनके ज्ञान और वैराग्य का प्रभाव तो उस विद्युच्चर नामक चोर पर भी पड़ा, जो उसी रात जम्बूकुमार के मकान में चोरी करने आया था। लेकिन जम्बूकुमार तथा उनकी नव–परिणीता स्त्रियों की चर्चा को सुनकर तथा उन कुमार की वैराग्य परिणति देख उनके साथ ही मुनि हो गया।

बहिन - और उन कन्याओं का क्या हुआ?

भाई - उन्होंने भी अपनी दृष्टि को विषय–कषाय से हटाकर वैराग्य की तरफ मोड़ा और वे भी दीक्षा लेकर अर्जिकायें हो गई। जम्बूस्वामी के माता–पिता ने भी अर्जिका और मुनिव्रत अंगीकार किया।

इस प्रकार सारा ही वातावरण वैराग्यमय हो गया। जम्बूकुमार मुनि निरंतर आत्म–साधना में मग्न रहने लगे और माघ सुदी सप्तमी के दिन–जिस दिन उनके गुरु सुधर्माचार्य को निर्वाण लाभ हुआ–जम्बूस्वामी को केवलज्ञान को प्राप्ति हुई थी।

बहिन - जिस प्रकार महावीर का निर्वाण–दिवस और गौतम का केवलज्ञान–दिवस एक है, उसी प्रकार सुधर्माचार्य का निर्वाण–दिवस और जम्बूस्वामी को केवलज्ञान–दिवस एक ही हुआ।

भाई - हाँ! उसके बाद जम्बूस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा १८ वर्ष तक मगध से लेकर मथुरा तक के प्रदेशों में तत्त्वोपदेश होता रहा और अन्त में वे चौरासी (मथुरा) * से मोक्ष पधारे।

प्रश्न -

१. जम्बूस्वामी का संक्षिप्त परिचय अपनी भाषा में दीजिये।

२. महाकवि पं॰ राजमलजी पाण्डे के व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व पर प्रकाश डालिये।

---

* पं॰ राजमलजी इन्हें विपुलाचल से मोक्ष जाना मानते हैं।

पाठ ८

बारह भावना

पं॰ जयचंदजी छाबड़ा

व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

(संवत् १७९५–१८८१)

जयपुर के प्रतिभाशाली आत्मार्थी विद्वानों में पं॰ जयचंदजी छाबड़ा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म जयपुर से तीस मील दूर डिग्गी–मालपुरा रोड पर स्थित फागई (फागी) ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम मोतीरामजी छाबड़ा था।

ग्यारह वर्ष की अल्पायु में आपकी रुचि तत्त्वज्ञान की तरफ हो गई थी। कुछ समय बाद आप फागई से जयपुर आगये जहाँ आपको महापण्डित टोडरमलजी आदि का सत्समागम प्राप्त हुआ था। आपको आध्यात्मिक ज्ञान जयपुर की तेरापंथ सैली में प्राप्त हुआ था। इसका उन्होंने इस प्रकार उल्लेख किया है :–

सैली तेरापंथ सुपंथ, तामें बड़े गुणी गुन–ग्रंथ।
तिनकी संगति में कछु बोध, पायो मैं अध्यातम सोध।।

आपके सुपुत्र पं॰ नन्दलालजी भी महान् विद्वान् थे। पं॰ जयचंदजी ने स्वयं उनकी प्रशंसा लिखी है।

आपकी रचनायें प्राय: टीकाग्रंथ हैं, जिन्हें वचनिका के नाम से कहा जाता है। वैसे आपकी कई मौलिक कृतियाँ भी हैं। आपके कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:–

१. तत्त्वार्थसूत्र वचनिका	२. सर्वार्थसिद्धि वचनिका
३. प्रमेयरत्नमाला वचनिका	४. द्रव्यसंग्रह वचनिका
५. समयसार वचनिका	६. अष्टपाहुड वचनिका
७. ज्ञानार्णव वचनिका	८. धन्यकुमार चरित्र वचनिका
९. कार्तिकेयानुप्रेक्षा वचनिका	१०. पद–संग्रह

प्रस्तुत बारह भावनायें आपके द्वारा ही बनाई गई हैं।

बारह भावना

अनित्य द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, परजय नय करि गौन।।

अशरण शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय।
मोह उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय।।

संसार पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध।।

अेकत्व परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय ।
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय।।

अन्यत्व अपने अपने सत्त्वकूँ, सर्व वस्तु विलसाय ।
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय।।

अशुचि निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह ।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह।।

आस्त्रव आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय–दृष्टि निहार ।
सब विभाव परिणाममय, आस्त्रवभाव विडार ।।

संवर निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पाप की हानि ।।

वैराग्योत्पत्तिकाल में बारह भावनाओं का चिंतवन करने वाले ज्ञानी आत्मा इस प्रकार विचार करते हैं :–

अनित्य द्रव्य की दृष्टि से देखा जाय तो सर्व जगत् स्थिर है, पर पर्याय–दृष्टि से कोई भी स्थिर नहीं है, अत: पर्यायार्थिक नय को गौण करके द्रव्य–दृष्टि से एक आत्मानुभूति ही करने योग्य कार्य है।

अशरण इस विश्व में दो ही शरण हैं। निश्चय से तो निज शुद्धात्मा ही शरण है और व्यवहार नय से पंचपरमेष्ठी । पर मोह के कारण यह जीव अन्य पदार्थों को शरण मानता है।

संसार निश्चय से पर–पदार्थों के प्रति मोह–राग–द्वेष भाव ही संसार है। इसी कारण जीव चारों गतियों में दु:ख भोगता हुआ भ्रमण करता है।

एकत्व निश्चय से तो आत्मा एक ज्ञानस्वभावी ही है। कर्म के निमित्त की अपेक्षा कथन करने से अनेक विकल्पमय भी उसे कहा है। इन विकल्पों के नाश से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

अन्यत्व प्रत्येक पदार्थ अपनी–अपनी सत्ता में ही विकास कर रहा है, कोई किसी का कर्त्ता–हर्त्ता नहीं है। जब जीव ऐसा चिंतवन करता है तो फिर पर से ममत्व नहीं होता है।

अशुचि यह अपनी आत्मा तो निर्मल है पर यह शरीर महान् अपवित्र है, अत: हे भव्य जीवो! अपने स्वभाव को पहिचान कर इस अपावन देह से नेह छोड़ो।

आस्रव निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा केवल ज्ञानमय है। विभावभाव रूप परिणाम तो आस्रवभाव हैं, जो कि नाश करने योग्य हैं।

संवर निश्चय से आत्मस्वरूप में लीन हो जाना ही संवर है। उसका कथन समिति, गुप्ति और संयम रूप से किया जाता हैं, जिसे धारण करने से पापों का नाश होता है।

निर्जरा संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निज स्वरूप को पायकर, लोक शिखर जब थाय।।

लोक लोक स्वरूप विचारिकें, आतम रूप निहार।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि।।

बोधिदुर्लभ बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहि।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं।।

धर्म दर्शज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि ।
दयाक्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि।।

निर्जरा ज्ञानस्वभावी आत्मा ही संवर (धर्म) मय है। उसके आश्रय से ही पूर्वोपार्जित कर्मों का नाश होता है और यह आत्मा अपने स्वभाव को प्राप्त करता है।

लोक लोक (षट् द्रव्य) का स्वरूप विचार करके अपनी आत्मा में लीन होना चाहिये। निश्चय और व्यवहार को अच्छी तरह जानकर मिथ्यात्व भावों को दूर करना चाहिये।

बोधिदुर्लभ ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, अतः वह निश्चय से दुर्लभ नहीं है। संसार में आत्मज्ञान को दुर्लभ तो व्यवहार नय से कहा गया है।

धर्म आत्मा का स्वभाव ज्ञान–दर्शनमय है। दया, क्षमा आदि दशधर्म और रत्नत्रय सब इसमें ही गर्भित हो जाते हैं।

प्रश्न -

१. निम्नलिखित भावनाओं संबंधी छंद अर्थसहित लिखिये :–
अनित्य, एकत्व, संवर, बोधिदुर्लभ।

२. पं॰ जयचंदजी छाबड़ा के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिये।